चुनावी-प्रक्रिया सुधार-उपायों के खिलाफ?

डॉ. एम. डी. थॉमस

उच्चतम न्यायालय ने 2 मई 2002 को चुनाव आयोग को एक आदेश जारी किया था कि वह चुनावी उम्मीदवारों की पात्रता के तहत उन्हें दिशा-निर्देश दे। इसके मुताबिक चुनाव लड़ने वाले सभी उम्मीदवारों को अपने.अपने नामांकन पत्र के साथ अपनी शैक्षिक योग्यता, आपराधिक पृष्ठभूमि, सम्पत्ति, वित्तीय देनदारियां आदि का ब्यौरा देना होगा। राजनीति के अपराधीकरण रोकने तथा चुनाव प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाने के लिये किये गये उच्चतम न्यायालय तथा चुनाव आयोग के इस संयुक्त कदम को जितना सराहा जाय, कम है।

लेकिन, खेद की बात है कि सभी राजनीतिक दलों ने इस प्रस्ताव को आयोग द्वारा पेश की गई कड़ी शर्तो का करार देते हुए खारिज कर दिया। इस मुद्दे पर जो आम राय बनी हुई है वे उसे सर्वदलीय बैठक बुलाकर कायम रखने पर तुले हैं। साथ ही, व संसद के मानसून सत्र में चुनाव-सुधारों का मसौदा तैयार करके पेश करने पर विचार कर भी रहे हैं। राजनीतिक दलों की आशंकाएं हैं कि इन प्रावधानों का दुरुपयोग किया जा सकता है तथा इस प्रक्रिया से व्यावहारिक दिक्कतें खड़ी हो सकती हैं। इसलिए वे ऐसे तर्क निकालते हैं कि कानून बनाने का हक संसद को ही है। इसलिए संसद चुनाव आयोग और उच्चतम न्यायालय के प्रस्ताव का स्वागत नहीं करती है।

उपर्युक्त मामले से मुख्तलिफ सवाल उठते हैं, जिन पर गौर करना आजाद भारत व बेहतर भविष्य का सपना देखने वाले हर नागरिक का फर्ज बनता है। पहला सवाल है, चुनाव का सामना करने जा रहे उम्मीदवार अपनी आपराधिक पृष्ठभूमि का ब्यौरा देने से कतराते क्यों है? देश के प्रशासन की जिम्मेदारी संभालने की शपथ लेने जा रहे उम्मीदवारों को इस बात का गर्व होना चाहिए कि वे अपने नामांकन पत्र के साथ अपनी नेकीयत का नक्शा पेश कर रहे हैं। उन्हें उससे खुशी होनी चाहिए कि उन्होंने अपने साफ-सुथरे चरित्र के बलबूते ही देश का नेतृत्व करने की पात्रता हासिल की है। यदि किसी की अपराधिक पृष्ठभूमि रही हो तो उसमें इतनी विनम्रता नहीं तो कम से कम तमीज होनी चाहिए कि वे अपने को प्रशासन के पुनीत कार्य में शिरकत होने लायक नहीं माने। जो अपनी आपराधिक पृष्ठभ्मि के बावजूद नागरिकों का भविष्य-निर्माता बनना चाहे तो उसे भी एक मौका दिया जा सकता है, क्योंकि वह आगे भी अपराध करे, यह जरूरी नहीं है। लेकिन उसका साफसाफ ब्यौरा देने में क्या हर्ज है? जिस चुनाव-प्रक्रिया से उन्हें सरकारी दफ्तर में दाखिल होना है, वहां उनके चरित्र का दस्तावेज रहना चाहिए। मतदाताओं को मुगालते में नहीं रखा जाना चाहिए। कौन प्रशासन के लायक है और कौन नहीं, उसका फैसला, उम्मीदवार खुद नहीं करे, वरन् मतदाता ही करे। चुनाव आयोग का फर्ज है कि वह मतदाताओं के हकों को सुरक्षित कायम रखे। साथ ही, असभ्य और आपराधिक प्रवृत्ति वाले उम्मीदवारों को प्रशासन में आने से रोकना भी उसका कर्तव्य है। राजनीति के अपराधीकरण तथा अपराध के राजनीतिकरण के इस माहौल में प्रशासन-तंत्र में सुधार लाने में उच्चतम न्यायालय की महत्वपूर्ण भूमिका भी निर्विवाद है। उसे समय-समय पर संसद का मार्गदर्शन करते रहने भो चाहिए। इस विचार से राजनीतिक दलों द्वारा उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग दोनों के दिशा-निर्देशों को दरकिनार करने के इस फैसले को जायज ठहराना हरगिज मुमकिन नहीं लगता है।

दूसरा सवाल है, उम्मीदवार शैक्षिक योग्यता की जरूरत पर मात क्यों खाते हैं? वर्तमान समाज ने हर क्षेत्र में तरक्की की है। आज ज्ञान-विज्ञान की बेशुमार दिशाएं खुलकर प्रगति की ओर बढ़ रही है। खास तौर पर शासन-तंत्र को संभालने वालों को पैनी दृष्टि और समग्र समझ की आवश्यकता होती है। आज भारतीय समाज पहले से कहीं अधिक जटिल भी हो गया है। ऐसे माहौल में भारत का नेतृत्व करने की ख्वाहिश करने वाले उम्मीदवारों को अपनी जिम्मेदारी के मुताबिक शैक्षिक काबिलियत बहुत जरूरी है। सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में चयन-प्रक्रिया प्रतियोगिता से संचालित है। इसमें शैक्षिक योग्यता बुनियादी है। राजनीतिक नेता ही ऐसे लोग हैं जो बगैर किसी शैक्षिक योग्यता के अपनी लाठी के ही बलबूते, सर्वोच्च पद पर पहुंच सकते हैं। यह देश के प्रति अपराध है, नागारिकों के प्रति घोर अन्याय भी। इसलिए योग्यता के साथ-साथ व्यावहारिक तजुर्बे के आधार पर ही उम्मीदवारों को चयनित किया जाना चाहिए। अशिक्षित और नालायक लोगों को चुनाव-प्रक्रिया के द्वारा आगे बढ़ाने से रोका जाना चाहिए। इस ख्याल से चुनाव आयोग का फर्ज है। इसके तहत राजनीतिक दलों द्वारा नामांकन पत्र के साथ शैक्षिक योग्यता और अन्य ब्यौरा पेश करने के लिये मुस्तैद नहीं होना कदाचित न्यायसंगत नहीं है।

तीसरा सवाल है, संसद के सदस्यों ने उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग दोनों के संयुक्त दिशा-निर्देश को नकारा है। समाज में ही नहीं, शासन-तंत्र में भी, कानून-कायदे के मुताबिक संतुलन बनाये रखने में उच्चतम न्यायालय की अहम भूमिका है। जब हालात काबू के बाहर हो जाते हैं, उच्चतम न्यायालय का अधिकार अपने-आप बढ़ जाता है। साथ ही, चुनावी प्रक्रिया को शासन की गुणवत्ता के मद्देनजर समायोजित करना चुनाव आयोग का कर्तव्य है। उम्मीदवारों के चयन में गुणात्मक नतीजे को सामने रखते हुए अपनी नीतियों में फेर-बदल करना भी आयोग के हद के भीतर हो है। शासन करना संसद के साथ-साथ उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग की सम्मिलित जिम्मेदारी है। इस दृष्टि से सहयोगात्मक नीति से हटकर संसद द्वारा उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग की अवमानना करना संविधान और शासन-तंत्र दोनों के अनुसार कहां तक तर्क-संगत और सही है, यह वाकई गौरतलब है।

चौथा सवाल है, चुनाव आयोग के दिशा-निर्देशों वो नामंजूर करने में सभी राजनीतिक दलों की आमराय हासिल है। किसी भी मुद्दे पर आम सहमति बनना एक बड़ी उपलब्धि है। किन्तु अक्सर यह देखा जाता है कि जिस दल के हाथ में सत्ता की बागडोर है उसके सबसे अच्छे सुझावों को भी विपक्षी दलों द्वारा किसी न किसी प्रकार से नकारा जाता है। सहयोगी दलों को भी प्रमुख दलों की बातों को पचाने में मुश्किलें आती है। राजनीतिक दलो के ऐसे स्वभाव के चलते चुनाव-प्रक्रिया में उम्मीदवारों के चरित्र की जांच-पड़ताल के मुद्दे पर विपक्षी तथा सहयोगी दलों सहित सभी राजनैतिक दलों में हासिल हुई आम राय भारतीय राजनैतिक इतिहास में एक अनूठी घटना के रूप में नजर आती है। यह 'गिनिज बुक ऑफरिकार्ड्स' में दाखिल होने लायक बात लगती है। 'दाल में कुछ काला है' ऐसा लगता है। हाल ही के कुछ आंकलन से आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व तिपय महानुभाव जनता पर शासन करने में लगे हैं, इसका खुलासा हुआ हे। आज के समय में बहुत ही कम उम्मीदवार ऐसे पाये जाते हैं, जो आपराधिक पृष्ठभूमि या प्रवृत्ति से दूर हों, जो भ्रष्ट न हों, जो असल में शासन का पवित्र कार्य संभालने के योग्य हों। हमारे शासन-तंत्र में सर्वोच्च बनने जा रहे महानुभाव 'सुरक्षा जांच' से बचने की कोशिश करन के साथ-साथ 'सुरक्षा जांच' के प्रावधान के खिलाफ भी हो रहे हैं, ऐसा लगता है। ऐसे रवैये से राजनीतिक दलों तथा सभी संबंधित उम्मीदवारों की पारदर्शिता पर सवालिया निशान लगाता है।

पांचवा सवाल है, चुनावी प्रक्रिया की सुधार-योजना को नकारने से प्रशासन की अवधारणा और प्रासंगिकता दोनों पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है। समाज को इंसानियत के आदर्श मूल्यों के मुताबिक सुचारू रूप से चलाने में प्रशासन की असली धारणा बनती है। भांति-भांति के स्वभाव, तौर-तरीके, रीति.रिवाज, आचार-विचार, पेशे, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, संस्कृति आदि के बीच ताल-मेल बनाये रखे बिना समाज का सार्थक अस्तित्व नामुमकिन है। आपसी सद्भाव, समन्वय और सहयोग के लिए कानून बनाने

और उन्हें कायम रखने का इंतजाम बनाने में ही प्रशासन की सार्थकता निहित है। 'रक्षक ही भक्षक' बन जाये तो क्या तमाशा है? जिन्हें आर.पार भ्रष्टाचार से दूषित और पीड़ित भारतीय समाज को सुधार की राह में ले जाने के लिए जी-तोड़ मेहनत करते रहना चाहिए, वे खुद नैतिक मूल्यों व व्यवहार में गिरते चले जायें, तो समझना चाहिए कि भारत का भविष्य बड़ी मात्रा में धुआंदार बनता जा रहा है। गुजरात जैसी नीच और निन्दनीय हरकतों पर गौरव-यात्रा निकालने वाले शासक असत्य पर सत्य की मुहर लगाने की कोशिश कर रहे हैं। वे स्वयं अंधेर में भटक रहे हैं और भारतीय समाज के साथ खिलवाड़ भी कर रहे हैं। उनसे शासन की क्या उम्मीद की जा सकती! शासन करने का मतलब राज करना नहीं है, देश की सम्पत्ति लूट कर अपनी आजीविका चलाना भी नहीं है, बल्कि समाज की सेवा करना है। जो उसके काबिल न हो, शासन-तंत्र में दाखिल होने की महत्वाकांक्षा न रखे। भारतीय संस्कृति की महिमा का ढिंढोरा पीटने वाले, नागरिकों के कानों में भारत को ऊंचाइयों की ओर ले जाने के मंत्र फूंकने वाले, सत्यमेव जयते का नारा लगाने वाला तथा खुदा को गवाह बनाकर जनता.जनार्दन की सेवा करने की कसम खाये हुए हमारे तथाकथित राजनेताओं में मानव-मूल्यों के व्यवहार में ऐसा उल्टा चलन देखना चारित्रिक पतन की चरम सीमा नहीं तो क्या है? भारत के सर्वोच्च पदों को अलंकृत करने वाले महानुभावों को इस हद तक पहुंचते हुए देखने से मुझे लगता है कि भारत को ऐसे खुदगर्ज और सुधार-योजना को पीठ दिखाने वाली शासन की जरूरत नहीं है।

अत: मेरा यह मानना है कि उच्चतम न्यायालय का आदेश और चुनाव आयोग के दिशा-निर्देश पूरी तरह से तर्क-संगत हैं। चुनाव-प्रक्रिया को सुधारने तथा पारदर्शी उम्मीदवारों को चयनित करने के लिए यह लिया गया कदम वास्तव में पूरी तरह से स्वागत-योग्य है। संसद को इसे वक्त की पुकार समझकर इस पर अमल करने के उपाय खोजने चाहिए। लीक से हटकर जब कोई प्रस्ताव आता है उनमें व्यवहारिक दिक्कतें आयेंगी ही। उसकी खूबी को समझने में कुछ वक्त लग भी सकता है। धैर्यपूर्ण मनन की जरूरत है। बेहतर शासन-तंत्र कायम करने और उज्ज्वल भारत को बनाने के लिए चुनाव आयोग की उपर्युक्त सुधार-योजना को बुनियादी तौर पर अपनाई जानी चाहिए। देश की भलाई चाहने वाले नागरिकों को उच्चतम न्यायालय और चुनाव आयोग के दिशा-निर्देशों पर मजबूती से अमल करने के तौर-तरीकों को सुझाना होगा।

डॉ. एम. डी. थॉमस
संस्थापक निदेशक, इंस्टिट्यूट ऑफ़ हार्मनि एण्ड पीस स्टडीज़, नयी दिल्ली
प्रथम मंजिल, ए 128, सेक्टर 19, सेक्टर 19, द्वारका, नयी दिल्ली 110075

दूरभाष: 09810535378 (p), 08847925378 (p), 011-45575378 (o)
ईमेल : mdthomas53@gmail.com (p), ihps2014@gmail.com (o)
बेबसाइट: www.mdthomas.in (p), www.ihpsindia.org (o)

Twitter: https://twitter.com/mdthomas53
Facebook: https://www.facebook.com/mdthomas53
Academia.edu: https://independent.academia.edu/MDTHOMAS